□□□□ □□□□□

जनसत्ता 6 मई, 2014 : चुनावी समर में हर राजनीतिक पार्टी यह साबित करने पर तुली हुई है कि हिंदुस्तानियों और हिंदुस्तानियत की असली पहरेदार वही हो सकती है। सरदारी को पहरेदारी बताने और पहरेदारी के परिभाषित करने का यह राजनीतिक खेल रोचक होता जा रहा है। हकीकत यह है कि अधिकतर चुनावी उम्मीदवारों को न तो सरदारी की जिम्मेदारी का ज्ञान है और न ही पहरेदारी की मर्यादा का आभास। राजनीतिक पाठशाला में मतदाताओं को हर दिन विरोधाभासों से भरी हिंदुस्तानियत की एक नई परिभाषा से दो-चार होना पड़ रहा है। चूंकि चुनावी दस्तूर सुनने और सुनाने का है, इसलिए मतदाताओं के पास कोई और विकल्प भी नहीं है। पर सदियों में गढ़ी गई हिंदुस्तानियत की निशानियों को मिटा कर उसकी नई परिभाषा गढ़ने की इजाजत किसी को भी नहीं दी जानी चाहिए। हिंदुस्तानियत सदियों के राजनीतिक और सामाजिक मंथन से निकली हुई वह परंपरा है, जिसका अंश खून बन कर प्रत्येक भारतीय की रगों में दौड़ता है। उसे पुन: परिभाषित करने की नहीं, समझने की जरूरत है।

धर्म परायणता और सर्व-धर्म समभाव हिंदुस्तानियत की सबसे महत्त्वपूर्ण निशानी है। नास्तिक यहां ढूंढ़े से भी नहीं मिलते। आस्था की मंदाकिनी इतनी पवित्र है कि मंदिर, मस्जिद, गुरद्वारा या अन्य धर्मस्थान दिखते ही हर कोई नतमस्तक होकर आगे बढ़ जाता है। आरती के दीप और अजान की पुकार प्रत्येक भारतीय को अपने रब को याद करने का संदेश देते रहते हैं। एक-दूसरे के सामाजिक और धार्मिक उत्सवों में अपने-अपने तरीके से सहभागिता करके हम सभी उस परंपरा को आगे बढ़ाते हैं, जिसे हिंदुस्तानियत की पहचान माना जाता रहा है। इस सहभागिता में यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि मुसलमानी टोपी पहन कर शरिक हुआ जाए या तिलक लगा कर।

हर धर्म प्रतीकवाद में विश्वास नहीं करता। किसी व्यक्ति द्वारा एक धर्म के प्रतीक को धारण न करने की बदौलत उसे सांप्रदायिक मान लेना सांप्रदायिकता की उचित व्याख्या नहीं है। मौलाना महमूद मदनी ने स्पष्ट कर दिया है कि एक मुसलमान होने के नाते उन्हें तिलक लगाना कतई स्वीकार नहीं है। पर इसका अर्थ यह नहीं निकाला जाना चाहिए कि हिंदू धर्म के प्रति उनके मन में कोई निरादर का भाव है। सर्व-धर्म समभाव प्रदर्शित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हर धर्म के प्रतीक को धारण किया जाए। तटस्थ लोगों का मत है कि राजनेता बिना भेदभाव हर धर्म के लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए राजनेताओं को किसी भी धर्म के प्रतीक को स्वीकार करने में झिझक नहीं होनी चाहिए। अभिनंदन-स्वरूप कोई भी धार्मिक प्रतीक स्वीकार करने से न तो धर्म परिवर्तन हो जाता है और न ही उससे अपने धर्म के प्रति आस्था में कमी आती है।

सहिष्णुता और सह-अस्तित्व भारतीयता की दूसरी प्रमुख पहचान है। मदन मोहन मालवीय की मूर्ति पर एक राजनेता के माल्यार्पण करने के बाद दूसरी पार्टी के लोगों द्वारा मूर्ति का गंगाजल से शुद्धिकरण करने का उपक्रम क्या संदेश देता है? हिंदुस्तानियत ने बौद्ध, जैन और सिख धर्म को जन्म ही नहीं दिया, उन्हें पोषित करके विदेशों तक में प्रचारित किया। सहिष्णुता और अहिंसा के बलबूते पर गांधीजी, मार्टिन लूथर किंग और नेल्सन मंडेला जैसे महानायक इतिहास में अमर हो गए। पर चुनावी महाभारत में सहिष्णुता और अहिंसा के आदर्शों को तिलांजलि देने में कोई भी पीछे नहीं है। एक-दूसरे की व्यक्तिगत जिंदगी पर कीचड़ उछालने और भाषा की मर्यादा की लक्ष्मण रेखा पार करने को हिंदुस्तानियत कतई नहीं कहा जा सकता। चुनाव-प्रचार में राजनेता फिर कौन-सी हिंदुस्तानियत के अलमबरदार बनने का दंभ भर रहे हैं?

सांप्रदायिकता का जहर नाभि में होता है। कुछ लोग कभी-कभार इसे भाषा और किरदारों में ढूंढ़ा करते हैं। चुनावी-दंगल में सांप्रदायिकता का दांव खेल कर विरोधी को चित करने का प्रयास हर पार्टी कर रही है। उम्मीदवारों का चयन करने से पहले सभी पार्टियां यही देखती हैं कि अमुक क्षेत्र में किस जाति, धर्म या संप्रदाय के लोग ज्यादा रहते हैं। फिर भी एक दूसरे पर सांप्रदायिकता के जहर की खेती करने का आरोप लगा कर पार्टियां खुद को धर्म-निरपेक्ष साबित करने की कोशिश करती नजर आती हैं। कुछ पार्टियों ने तो सांप्रदायिकता को चुनाव-प्रचार का प्रमुख मुद्दा बना लिया है।

हकीकत यह है कि सांप्रदायिकता के हमाम में सारी पार्टियां नंगी हैं। एक राजनेता अपने राजनीतिक विरोधियों को पाकिस्तान भेजने की बात कर रहा है। दूसरा अपने विरोधियों को समंदर में डुबो देने की दलील दे रहा है। भूमि-पुत्रों के अधिकारों की दुहाई देकर दूसरे प्रदेशवासियों को देश में ही निर्वासित करने का नारा भी कुछ पार्टियों ने बुलंद किया है। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि दक्षिण भारतीयों और आदिवासियों को छोड़ कर अन्य सभी हिंदुस्तानी बाहर से आकर यहां बसे हैं।

भारतीय संस्कृति सह-अस्तित्व की भावना के फलस्वरूप उपजी एक इंद्रधनुषी संस्कृति है। चुनाव के गलियारों में फिर किस प्रकार के सांस्कृतिक शुद्धिकरण की बातें की जा रही हैं। भूमिपुत्रों की परिभाषा उन लोगों द्वारा क्यों दी जा रही है, जो स्वयं यहां बाहर से आए हैं?

सत्य को समझने और अंगीकार करने की क्षमता रखने के कारण ही हिंदुस्तानियत दुनिया की सबसे पुरानी जीवित सभ्यताओं में से एक है। सत्यवादी हरिश्चंद्र, धर्मराज युधिष्ठिर और महात्मा गांधी ने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठ कर सदा सत्य के सिद्धांत को सर्वोपरि रखा था। ऐसी संस्कृति के वारिस चुनावी-संग्राम में फिर झूठ का सहारा क्यों लेते हैं? कपोल-कल्पित आंकड़ों और कहानियों को आधार बना कर चरित्र-हनन और राष्ट्र-निर्माण की झूठी तस्वीर पेश करना कहां तक उचित है? इस प्रकार के उपक्रम को वाक-पटुता कह सकते हैं, एक स्वच्छ राजनीति का आधार नहीं कह सकते।

असत्य बातों की सुहालियों से पेट नहीं भरता, जबकि सत्य का विष भी मनुष्य को जीने लायक ऊर्जा दे ही देता है। राजनीति में कितना झूठ चलता है यह तो कोई राजनेता ही बता सकता है, पर दैनिक व्यवहार में असत्य उस पाप के घड़े के समान है, जिसे एक न एक दिन फूटना ही होता है। सत्य की खोज के कारण ही हिंदुस्तानियत सहस्राब्दियों से बची रही, जबकि दूसरी समकालीन सभ्यताएं एक-एक कर के विलुप्त होती चली गईं।

हिंदुस्तानियत विश्व में सदा शांति का प्रतीक रही है। राजधर्म निभाते हुए यहां के राजाओं ने युद्ध जरूर किए हैं, पर जनसंहार करना कभी भी इन युद्धों का उद्देश्य नहीं था। भारतीय राजाओं ने कभी भी किसी दूसरे महाद्वीप में जाकर आधिपत्य जमाने की कोशिश नहीं की। हर धार्मिक या सामाजिक अनुष्ठान के बाद शांति-पाठ करना भारतीयों की परंपरा रही है। चुनाव के दौरान फिर अशांति फैला कर राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश क्यों की जाती रही है?

देश में नौ चरणों में चुनाव हो रहे हैं, क्योंकि एक साथ चुनाव कराने के लिए आवश्यक सुरक्षा बल उपलब्ध नहीं हैं। और बिना सुरक्षा बलों के भारत में चुनाव कराने की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। चुनावों के दौरान ऐसा क्या हो जाता है कि हर कोई असुरक्षित महसूस करने लगता है? चुनाव-प्रचार के तौर-तरीकों में कोई खामी है या राजनीति की सरगर्मी वातावरण को संवेदनशील बना देती है? अशांति के माहौल में जिंदगी गुजारना भारतीयता नहीं है। चुनाव के मैदान में फिर क्यों कुछ लोग अशांति की बिसात पर अपनी गोटियां बिठाने की फिराक में रहते हैं?

दया-भाव भारतीयता का पर्यायवाची है। सबल द्वारा निर्बल की मदद करना हमारी परंपरा का महत्त्वपूर्ण अवयव है। हिंदुओं में दान, मुसलमानों में जकात और सिखों में दसौंधी निकालने की प्रथा यही इशारा करती है कि समर्थ को असमर्थ की मदद करनी चाहिए। पर दया-भाव का उद्देश्य निर्बल का सशक्तीकरण होना चाहिए, न कि उसकी निर्भरता को बढ़ावा देना।

चुनावों में, खासकर गरीब बस्तियों में शराब, भोजन, वस्त्र और धन बंटवाना किस प्रकार का दया-भाव है? चुनावी घोषणापत्र में लालच देकर मतदाताओं को लुभाना अनैतिक ही नहीं, गैर-कानूनी भी है। यह उसी प्रकार अपवित्र और वर्जनीय है, जिस प्रकार दान के साथ मनोरथ को जोड़ देना।

सार्वजनिक जिम्मेदारी के न्यास-परक मानसिकता के आधार पर निभाना भारतीयों की विरासत है। राजा जनता का प्रतिनिधि होता है, स्वामी नहीं। महाराज भरत ने अपनी राजगद्दी अपने पुत्र को न देकर इसी परंपरा का सूत्रपात किया था। लोकतंत्र में शासक को वंशवाद का प्रतीक नहीं बनना चाहिए। शासक वही बनना चाहिए। जो योग्य हो। गांधीजी ने इस आदर्श को बखूबी प्रचारित किया था। उनका मानना था कि शासक को अपनी जिम्मेदारियां ईश्वर के एक न्यासी के रूप में निभानी चाहिए। और न्यासी का मूल कर्तव्य न्याय का विकास करना होता है, न कि स्वयं का सशक्तीकरण।

पश्चात्ताप करके सही मार्ग पर चलने की प्रतिबद्धता प्रदर्शित करना हमेशा हिंदुस्तानियत का तकाजा रहा है। ईसा मसीह ने पश्चात्ताप करने वाले के गुनाह माफ कर देने का उपदेश दिया था। महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण ने द्रौपदी की रक्षा करते वक्त भी यही संदेश दिया था। अपनी गलतियों की माफी मांग लेने से मनुष्य का कुछ नहीं बिगड़ता है! आखिर गलतियां इंसानों से ही होती हैं। राजनीति के अखाड़े में फिर राजनेता क्यों अपनी गलतियों की माफी मांगने से झिझकते रहते हैं।

महिलाओं पर वार न करना भारतीयता का प्रमुख सिद्धांत रहा है। महायोद्धा भीष्म ने विराट युद्ध में बृहन्नला के रूप में अर्जुन और महाभारत के युद्ध में स्त्री-स्वरूपा शिखंडी के विरुद्ध हथियार उठाने से मना कर दिया था। महिलाओं का सम्मान करना भारतीय परंपरा रही है। चुनाव के रण में कानून स्त्री-पुरुष में भेद नहीं करता। दरअसल, चुनाव धर्म-युद्ध नहीं, प्रतिनिधि चुनने की एक प्रक्रिया मात्र है। फिर भी भारतीयता का तकाजा है कि चुनाव प्रचार के दौरान महिलाओं की गरिमा के विरुद्ध कोई बात न कही जाए। चुनाव-प्रचार के दौरान कई बार इस परंपरा का उल्लंघन होते देख कर दुख होता है।

चुनाव के माहौल में हिंदुस्तानियत की निशानियों की बात करना प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि सभी पार्टियां हिंदुस्तानियत की दुहाई देकर इंसानियत की बेहतरी के लिए जनता से अनेक वादे करती हैं। जरूरत इस बात की है कि राजनेताओं को हिंदुस्तानियत की सही निशानियों से रूबरू कराया जाए। उन्हें हिंदुस्तानियत की परिभाषा को मनमाने ढंग से गढ़ने की इजाजत न दी जाए। राजनीति एक बार के चुनाव या कुछ दशकों के शासकों की दासी नहीं है। राजनीति की धारा समय के साथ अविरल बहती है। इसे पवित्र रखने में ही देश-हित और लोक-हित निहित है।

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta